ओ३म्

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय

अथ

अनुभ्रमोच्छेदन

श्रीमत्स्वामिसरस्वतीदयानन्दजीके

शिष्य भीमसेन शर्मा ने

राजा शिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के उत्तर में

वनाया

अजमेर नगरस्थ

वैदिक यन्त्रालय में छप कर प्रकाशित हुआ

सम्वत् १९६४

[चौथी वार १०००] [मूल्य)|||

ओ३म्
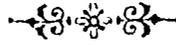
॥ अनुभ्रमोच्छेदन ॥

यस्या नरो बिभ्यति वेदवाह्यास्तया हि युक्तं जनसेनया यत्।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमाप्नोति ॥ १ ॥

भूमिका ।

मैंने विचारा था कि राजाजी और स्वामीजी ने एक २ वार लिखा है आगे इस का प्रपञ्च न बढ़ेगा परन्तु वैसा न हुआ और उन के अनुगामी लोगों ने समाचार पत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैंने यह जान भी लिया कि स्वामीजी अपने नाम से इस पर कुछ भी न लिखें और न छपवावेंगे क्योंकि इस पर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्रीजी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इस के प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामीजी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतीज्ञा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़ कर देखने से कुछ इस से भी तत्त्व निकलेगा और जो कुछ इस में भूल चूक रहेगी उस को सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसादजी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजाजी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उसमें स्वामी जी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये है उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपात रहित होकर देखेंगे तब अवश्य निश्चय करेंगे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

देखिये राजाजी के प्रिय और सुन्दर लेख को निवेदन पहिला पृष्ठ १ पंक्ति ११ ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मंगा के पृष्ठ ९ से ८८ तक देखा। विचित्र लीला दिखाई दी आधे आधे बचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये है और शेषार्द्ध का जो प्रतिकूल पाये परित्याग उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन

के अर्थ पलट दिये । पृष्ठ ४ पङ्क्ति ७ ऐसा न हो कि (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थांभे किसी अथाह गढ़े वा घोरनरककुण्ड में जा गिरें । नि० २ पृष्ठ २ । पंक्ती २४ खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज बिगाड़ा । पृष्ठ ५ पंक्ति २५ निदान जब मैंने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस, अमीरका, अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो । इत्यादि वचन जो ये राजा शिवप्रसादजी ने अपने दोनों निवेदनों में लिखे हैं क्या इन को सुवचन गालीप्रदान कागज बिगाड़ना आदि कोई भी मनुष्य न समझेगा ? । मैंने राजा शिवप्रसादजी के दोनों निवेदनों और स्वामीजी के भ्रमोच्छेदन को भी देखा । प्रथम निवेदन में जो २ प्रश्न राजाजी के थे उस २ का उत्तर भ्रमोच्छेदन में यथायोग्य है ऐसा मै अपनी छोटी विद्या और बुद्धि से निश्चित जानता हूं राजाजी और उन के साक्षियों की विशालबुद्धि है इसलिये उन के योग्य ठीक २ उत्तर न हुए होंगे । इसमें क्या अद्भुत है अब मैं अपनी अल्प विद्या और बुद्धि के अनुसार द्वितीय निवेदन के उत्तर में थोड़ासा लिखता हूं । निवेदन दूसरा पृष्ठ ४ पङ्क्ति १९ भला सूर्य्य और घड़े की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्योंकर घट सकेगी उधर सूर्य्य के सामने कोई आधा घंटा भी आख खोल के देखता रहै अन्धा नहीं तो चक्षु रोग से अवश्य पीड़ित होवे इस दृष्टान्त से राजाजी का यह अभिप्राय झलकता है कि वेद को दिन भर भी आंख खोल के देखा करे तो न अन्धा और न नेत्र रोग से युक्त होता है यहां उनका ऐसा अभिप्राय विदित होता है कि यह दृष्टान्त स्वामीजी का यहां घट नही सकता । जहां तक विचार के देखते हैं तो यही निश्चय होता है कि दृष्टान्त का साधर्म्य वा वैधर्म्य गुण ही दार्ष्टान्त में घटता है सब गुण कर्म स्वभाव कभी नहीं (जैसे साध्य साधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्) न्या० अ० १ । आ० १ । सू० ३६ (तद्विपर्य्ययाद्वाविपरीतम्) न्या० अ० १ । सू० ३७ । शब्दोऽनित्य इति प्रतिज्ञा उत्पत्तिधर्मकत्वादिति हेतुः । उत्पत्तिधर्मक स्थाल्यादि द्रव्यमनित्यमिति दृष्टान्त उदाहरणम् । यह शान्त वृत्ति से देखने की बात है कि शब्द में अनित्यत्व धर्म साध्य है क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला होने से जो २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे २ सब अनित्य है । जैसे स्थाल्यादि द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले होने से अनित्य है वैसे कार्य्य शब्द भी अनित्य है यहां केवल स्थाल्यादि पदार्थों का

उत्पत्ति धर्म ही कार्य शब्द में दृष्टान्त के लिये घटा के कार्य शब्दों को अनित्य ठहराया है यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि घट पटादिपदार्थों में चक्षु से दीखना स्थूल कठोर और अन्धेर में दीपक की अपेक्षा रहना आदि विरुद्ध धर्म है इसलिये उनका दृष्टान्त शब्द में नहीं घटेगा वा शब्द में भी वे धर्म हों कि दीपक जला के शब्द देखा जावे राजाजी को अन्धेर में दीपक से शब्द देखना उस से पानी आदि लाना चाहिये वा इस दृष्टान्त ही को न माने तो ऐसा दृष्टान्त कोई न मिलेगा कि जिस में दार्ष्टान्त के सब धर्म बराबर मिल जावें। और जो कोई पदार्थ ऐसे भी हों कि जिन के सब धर्म बराबर मिलें तो उन का परस्पर अभेदान्वय होने से उन में दृष्टान्त दार्ष्टान्त तथा उपमान उपमेयभाव कुछ भी न बन सकेगा। अब यहां प्रकृत में यह आया कि वेद को सूर्य का दृष्टान्त दिया है तो सूर्य अपने प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं रखता वैसे वेदों से भी जो अर्थ प्रकाशित होते है उन में ग्रन्थान्तर की अपेक्षा नहीं है स्वयं प्रकाशत्व धर्म दोनों का समान है। और जैसे उत्पत्ति धर्मवाले न होने से आत्मादि द्रव्य नित्य है वैसा शब्द नहीं क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला है यहां केवल वैधर्म्य अर्थात् कार्य्य शब्द के अनित्यत्व धर्म से विरुद्ध आत्मा का नित्यत्व धर्म ही दृष्टान्त के लिये घटाया है किन्तु जो आत्मा और शब्द के प्रमेयत्व आदि साधर्म्य है वे विवक्षित नहीं। जैसा राजाजी का दृष्टान्त विषयक मत है वैसा किसी विद्वान् का नहीं कि दार्ष्टान्त के सब धर्म दृष्टान्त में घट सकते हों। निवे० २ पृष्ठ ५। पं० १६। राजाजी स्वामी जी से पूछते है कि (स्वामीजी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियों ने कहां ऐसा लिखा है कि मंत्रसंहिता ही वेद है ब्राह्मण वेद नहीं है) इस का उत्तर अब यह ब्राह्मण शब्द लौकिक है वा वैदिक इस के वैदिक होने में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता लौकिक होने में प्रमाण देखो ॥

तत्र लौकिकास्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये इषे त्वोर्जेत्वा। अग्निमीलेपुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति।

अब यहां अन्तस्थः नेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक शब्द में केवल ४ मंत्र संहिताओं के उदाहरण दिये है जो ब्राह्मण भी वेद होने तो वैदिक शब्दों में उन का उदाहरण क्यों न देते ? अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह नपुंसक लिंग न होने से ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु पुल्लिङ्ग होने से मनुष्यों में जाति विशेष का नाम है तो उस से पूछना चाहिये कि नपुंसक लिङ्ग

अन्थवाची ब्राह्मण शब्द का वैदिक शब्दों मे पाठ क्यों न किया ? । हां प्रकरण से अर्थ की सङ्गति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है । यहां पतञ्जलि जी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध होगया कि मन्त्रसहिता ही वेद है ब्राह्मण नहीं । अब स्वामी जी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतञ्जलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजाजी के ऊपर गिरता है कि राजाजी यह बतलावें कि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मन्त्र और ब्राह्मणभाग दोनों वेद है अस्तु तावत् । निवे० २ । पृष्ठ ५ । प० १८ । पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि' कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मत्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मन्त्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां ' भाषायाम् ' कहा राजाजी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्नलिखित प्रमाण पाणिनिसूत्र और वेदमन्त्र आदि का अर्थ करके अपने पक्ष में घटाना सुगम क्योंकर होसकेगा अब देखिये । छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । अ० ४ । पा० २ सू० ६६ । इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येतृ वेदितृ विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येतृ वेदितृ अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो । अब राजाजी के इस लेखानुसार कि (जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट " छन्दसि " कहा) इस से पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है । क्योंकि जो छन्द के कहने से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही ग्रहण हो जाता तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया इससे स्पष्ट ज्ञापक होता है कि छन्द से ब्राह्मण पृथक् है । निवे० २ पृष्ठ० ५ । पं० २२ । से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्वमीमांसा को तो स्वामीजी महाराज मानते हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावेंगे) तच्चोदकेषु मंत्राख्या । अ० १ पा० २ सू० ३२ । शेषे ब्राह्मण शब्द । अ० २ । पाद १ सू० ३३ इस का अर्थ बहुत स्पष्ट है वेद का मन्त्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण यह अनुभवार्थ राजा जी ने शबर स्वामी की टीका में से सुना होगा परन्तु यहां यह भी विचार करना उन को योग्य था कि इन सूत्रों के सम्बन्ध में कहीं वेदसंज्ञा निर्वाचनाधिकरण है वा नहीं किन्तु यहां तो केवल मन्त्रनिर्वचनाधिकरण और ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण है इस से फिर मन्त्र और ब्राह्मण दोनों की वेद संज्ञा है यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ

वेदनिर्वचनाधिकरणम्) तो राजाजी का अभिप्राय अवश्य सिद्ध हो जाता । परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्याभिधान कर दिया है अब इन में शेष अर्थात् बाकी पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना व्याख्या करनी करानी आदि है और थी भी जो थी सो ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनिपर्यन्त महर्षि महाशय लोगों ने कर दी है जिससे ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं इसीसे इन का नाम ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् " ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति " । परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजाजी आदि को भ्रम हुआ है सो शवर स्वामी जी की इसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किल्लक्षणं ब्राह्मणम्) (मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेद.) विचार योग्य बात है कि न जाने शवर स्वामी ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इन की अद्भुत कथा को देखिये कि (**प्रश्न**) ब्राह्मण का क्या लक्षण है ? (**उत्तर**) मन्त्र और ब्राह्मण वेद है विद्वान् लोग विचार लेंगे कि जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर शवर स्वामी ने दिया है वा नहीं ? यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं । किन्तु "आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे"। इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निर्वे० दू० २। पृष्ठ ५। पं० २५ निदान जब मैंने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम वा साहब से कोई नया तर्क और न्याय, रूस अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो, स्वामीजी ने जो भूमिका में गोतम न्याय का प्रमाण वेदब्राह्मण विषय में लिखा है उस को वही पुरुष समझ सकता है कि जिस ने उन ग्रन्थों की शैली देखी हो । विना पढ़े सब विद्या किसी को नहीं आ जाती । और जिन्हों ने उन शास्त्रों में अभ्यास ही नहीं किया वेही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणाद के तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर न पाया इत्यादि । अब राजाजी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्योंकि उन के प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं देसकता । और स्वामीजी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्क न्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते वा लिखवा लेते । इससे स्पष्ट विदित होता है कि राजाजी ने ही उन विलायतियों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था । ठीक है । "यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी"—इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि

मुनियों के ग्रन्थों से भी न हुआ तो सब ऋषियों से बढ़ के राजा जी हो गये इस से स्पष्ट सब महात्मा ऋषि लोगों की निन्दा आ जाती है (निवे० २ । पृष्ठ ६ । पं० ४ । फरिङ्गस्तान के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया । बहुत अचरज में आये और कहने लगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उन के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजाजी का पक्ष दृढ़तर सिद्ध हो गया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामीजी के मनुष्य होने में सन्देह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गम्भीर आशय युक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य मानेगा कि स्वामीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह है । निवे० २ । पृष्ठ ७ । पं० २० । डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह देखिये चित्त धर के (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते है) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११ । पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परन्तु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मणग्रन्थ है उन को मै मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हू) जो उक्त साहब ध्यान देकर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते । निवे० २ पृष्ठ ७ । इसी उत्तर और इस विषय से आगे जो २ उक्त साहब ने लिखा है उस २ का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेदन में लिखा है । निवे० २ । पृष्ठ ८ । प० १८ (निः सन्देह दयानन्द सरस्वतीजी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिस के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेक कल्पित मत से विरुद्ध पाकर प्रक्षिप्त कह दें) मुझ को अपनी अल्पबुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीबो साहब की सम्मति सत्य हो तो ऐसा हो जाय किन्तु जो केवल एक डाक्टर टीबो साहब ने ही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामीजी को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीबो साहब को सम्मति देने और खण्डन मंडन का अधिकार किस ने दिया है ? हम भी पूछ सकते है अहो आश्चर्य्य इस सृष्टि में कैसी२ अद्भुत लीला देखने में आती है । निवे० २ । पृ० ९ । पं० ५ । (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण

ग्रन्थो के अनुसार जगदग्नि आदि का अर्थ यों ही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मणों को भी वेद भाग अथवा माननीय मानने में उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की युक्तिया क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी, पतञ्जलि महामुनिकृत महाभाष्य और पिङ्गलाचार्य्यकृत पिङ्गलसूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यों न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रन्थों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते है वैसे ही निघण्टु और निरुक्त आदि से भी वैदिक शब्दों के सञ्ज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गलसूत्रों से गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इन की वेदसञ्ज्ञा कौन कर सकेगा । निवे० २ । पृष्ठ ९ । पं० १० । (सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि वेद के नाम से मन्त्रभाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहा वेदों को अपरा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का ज्ञानकाण्ड मानना चाहिये) निवे० १ । पृष्ठ ११ । प० १० । (इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग "अपरा" हैं जो "परा" उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें) निवे० १ । पृष्ठ १२ । प० २० । (नोट—कि चारों वेदसंहिता और उन के छओं अङ्ग अपरा है परा उन के सिवाय अर्थात् उपनिषद् है) मुझ को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि यहां क्यों राजाजी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पाहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी और दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मन्त्रभागसंहिता और ब्राह्मणभाग को वेदसंज्ञा मानें इसीलिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मान कर ब्राह्मणों को वेदसंज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेख ने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इस को न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चार शब्द वाच्य मन्त्रभागसंहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है । ऐतरेय शतपथ छान्दोग्य ताण्ड्य आदि और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों की उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इसलिये यह पूर्वापर विरुद्ध लेख है । निवे० २ । पृष्ठ ९ ।

यं १४ (ऐसा ही आज तक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये है) यहा भी मै राजा जी से यह पूछता हूं कि परम्परा और आज तक इस वक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर आज तक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पाञ्च पीढ़ियों में परंपरा हो जाती है वैसी ग्रहण की जाय जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य और जो चार पांच पीढी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचार से भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्षवासी मनुष्यों की हिन्दूसंज्ञा सिवाय यवनग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला में पठनपाठनसंसर्ग के विना राजा जी को कहीं न मिलेगी और ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसापर्य्यन्त संस्कृतग्रन्थों में तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त और इस में रहनेवाले मनुष्यों का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलेंगी परन्तु यह राजाजी को स्वात्मानुभव वा इस देशियों पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियों से शिक्षा पाकर बोध हुआ होगा । यह सधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परम्परा में आज तक पढ देना । सो राजाजी को विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है । निवे० २ । पृष्ठ० १० । पं० ९ (भला आप के) (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से बना ही नहीं उत्तर के वदले दुर्वचनों की वृष्टि की, यदि काशीजी के पण्डित उन से शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलि का लाभ होगा इस से अतिरिक्त उस में से कुछ भी सार नहीं निकलेगा (इस पर मै अपनी बुद्धि के अनुसार इतना हीं लिखता हूं कि जो श्रीयुत बालशास्त्री जी "श्रीमत् पंडितवरधुरन्धरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्करविशेषणयुक्त ऐसा कहते है और ऐसा निश्चय हो तो स्वामीजी से उन के बड़े २ गम्भीराशय प्रश्नों के उत्तर कभी न वन सकेंगे फिर इस से मेरी और अन्य लाखों किंवा करोड़ों मनुष्यों की यह इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पक्ष को वेदादिशास्त्रद्वारा निरस्त कर दे तो उन को क्या ही लाभ न हो पुनः उक्त महाशय इस में क्यों विलम्ब कर रहे है और दुर्वचन पुष्पाञ्जलि विषय में इतना ही मै लिखता हूं कि काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्मकार भी स्वामी जी से उत्तम गाली सहस्र नाम आदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञापन समाचारों में छपवाया तथा ताली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामी जी पर किया है और स्वामी जी ने संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किस को गालीप्रदान

या दुर्वचन पुष्पाञ्जलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोध रहित होने के लिये स्वामीजी को लिखते हैं तो राजाजी ने पक्षपात और क्रोध युक्त स्वामीजी को कब देखा था ! भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पाञ्जलि है और स्वामीजी का लेख दुर्वचन पुष्पाञ्जलि कहा जा सकता है डाक्टर टीबोसाहब बहादुर स्वामी दयानन्दसरस्वती जी के मनुष्य होने में भी सन्देह लिखते है क्या डाक्टर टीबोसाहब को अपने सहीस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामी जी के मनुष्य होने में संदेह करते हैं क्या यह बात अद्भुत गंभीराशय और असङ्गत नहीं है ? अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझेंगे धन्य है ! श्रीयुत शिवप्रसाद जी वादी और धन्य है ! उन के साक्षी अर्थात् श्रीमज्जगत्पूज्यस्वामी विशुद्धानन्दसरस्वती जी श्रीमत् पण्डितवरधुरन्धर अज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बालशास्त्रीजी महाराज आर्यजन और विद्वज्जनमण्डलीभूषणकाशीराजस्थापितपाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबोसाहब बहादुर योरूपियन् कि जिन्होंने परस्पर मिल कर अपना अभीष्ट मत प्रकाशित किया है क्या भला ऐसे २ महाशयों के सामने मेरा लेख हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं की साक्षी होने पर राजा जी के विजय होने में किसी को सन्देह भी रहा होगा वाह ! वाह !! वाह !!! जो कोई पर पक्ष निषेध और स्वपक्ष सिद्ध करे तो ऐसी ही बुद्धिमत्ता से करे क्या सहायक अनुमतिदायक भी ऐसे होने योग्य है जहा अर्थी ही साक्षी और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे क्यों न हों क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहां तक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हां मैं भी तो राजा शिवप्रसाद जी और स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी वा बालशास्त्री जी और डाक्टर टीबोसाहब बहादुर साक्षी आदि महाशयों के सामने स्वामी जी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उन के प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभाव न जानता होता उन की निन्दा और अपमान करने में कमती कभी करता परन्तु वाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्) विना किसी के सङ्ग किये उस के गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामीजी का समागम रहा है जितने वर्ष वा महीने स्वामी जी का सत्सङ्ग मैंने किया है और यथाबुद्धि थोड़े से वेद भी देखे है उतने दिन और उतने मुहूर्त्त भी उन का समागम राजा जी आदिने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते । देखिये कई एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे

स्वामी जी को अत्यन्त मानते श्रद्धा करते और उपदेश का भी स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से लोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते इन को मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बात माननी और असत्य न माननी स्वामी जी की रीति है वैसी ही राजा जी आदि को मानने योग्य नहीं है ! परन्तु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजा जी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्षासहनरूप यानारूढ़ होकर स्वामी जी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जानें कब और कहां तक बढ़ेंगे क्या इस का फल आर्य्यावर्त्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा ? क्यों न यह घर की फूटरूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधनरूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अब तक न हुआ क्यों इस को परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिस से हम सब सर्वतन्त्र सिद्धान्तरूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नान कर त्रिविध ताप से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीपद्वीपान्तर के वासी मुसलमान, जैन, ईसाई, आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उन का दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और जैसी उन की कीर्त्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजा जी और उन के अनुयायी साक्षी स्वामी जी को अविद्वान् पशु अन्धे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामीजी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उन पर हल्ला किया संखिया मिलाकर पान बीड़ा दिया बुरी २ निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलन्दशहर करणवास के समीप जहां स्वामी जी रहते थे वहीं किसीने रात के १ बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ लेकर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई कश्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उन का मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलि का अवतार कोई कल मरते आज ही मरजाय तो अच्छा कई मजिस्ट्रेटों के कान भर व्याख्यान बन्द करा

देने में प्रयत्न कर चुके और कोई इन के बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना कई अपने बाग वगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने, सङ्ग करने और पुंसि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते है और स्वामी जी के दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते हैं कई स्वामी जी और स्वामी जी के उपदेश माननेवालों को महानरक में गिरना चितलाते है। आप गौतम और कणादादि महाशयों से अपने को बुद्धिसागर ठहराते और स्वामी जी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नों के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चाण्डाल आदि में विद्वत्ता और मनुष्य होने की शङ्का नहीं करते और स्वामी जी में विद्वत्ता के होने और मनुष्यपन में भी शङ्का बतलाते है कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते है अब कहां तक इस लम्बी गाथा को कहूं। मै ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित हो गया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही है तथापि धन्य है स्वामी जी को इतने हुए परभी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न होकर परोपकार से अपना जन्म सफल कर रहे है भला जो धर्म्म और परमात्मा की कृपा न होती और पर मत द्वेषी स्वमतानुरागी क्षुद्राशय लोगों का राज्य होता तो स्वामी जी का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न हो जाता क्या जो आर्य्य लोग भी मुसलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामी जी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आज तक कुशल रह सकते ? और जो स्वामी जी में पक्षपात राहित्य सत्यता विद्वत्ता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमलविद्याप्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे २ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योंकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहते भी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों की वेदोक्त धर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रह जाता क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को बिना आसमानी किताब वाले बुतपरस्त नालायक इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन मुसलमान और इसाई लाखह कोड़ह बहका के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हम से वादविवाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूठा है वे ही अब स्वामी जी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा परन्तु वाद करना भी असह्य समझते और कहते है कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते है स्वामी जी के सन्मुख तो ऐसा है परन्तु जिन्होंने स्वामी

जी के ग्रन्थ देखे और उन का समागम यथावत् किया है उन के भी सामने वे विजयवन्त नहीं हो सकते इत्यादि जो राजा जी आदि स्वामी जी के स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उन के साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते। सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार दोष परिहार वेदविद्योन्नतिरूप कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को सुस्थिर करे जिससे सब आर्य्य भाई उस को परस्पर प्रेम और उपकाररूप सुन्दर जल से सींच कर उस के आश्रय से प्रचीन आर्य्य पदवी को पाकर आनन्द में सदा रहैं और सब को रक्खें॥

राजा जी का बनाया इतिहास मैने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती है इन से यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा निम्न लेख से यह बात सब को विदित हो जायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजा जी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है जो उन्होंने इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ बनाया है उस को कोई विद्वान् पक्षपातरहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजा जी की मानस परीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य हो जावे कि इन का क्या अभीष्ट है उस में अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें हैं और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी है उनका स्वीकार और जो अन्यथा है उनके संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसे मुझ को विदित होता है इतिहासतिमिरनाशक पृष्ठ १। पंक्ति ११ (बाप, दादा और पुरुखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिस से आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूबा रखते है) राजा जी थोड़ासा भी सोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य कम्प जाकर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते। क्या अपने पुरुखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहास ज्ञान विषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं क्या कोई भी पूर्ण विद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है। यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उसको कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है। इति० पृष्ठ १—१९ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिलेगा) वाह वाह वाह ! ! ! न जाने किस

देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजा जी को अपूर्वविज्ञान हुआ क्या यूरोप अमरिका एफरीका आदि देशों के पूर्व इतिहासों से भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इतिहास बुरा है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये। इतिहा० पृष्ठ ३। पंङ्क्ति २। (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते हैं) क्या ही शोक की बात है कि मनु बाल्मीक व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजा जी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहासकर्त्ता होकर नकली की पदवी को धारण करते हैं विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्म्मिक आप्तपुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजा जी प्रसन्न बनते है। इतिहा० पृष्ठ ४, पं ३० (हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझनेवाला नहीं) सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत्त हुए। इतिहा० पृ० १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहेंगे कि जो बात पोथी में लिखी गई और परम्परा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्योंकर झूंठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिन्दुओं की परम्परा का तिरस्कार राजा जी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलबसिन्धु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना होता है। इतिहा० पृष्ठ १२। पं० १। से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन हिंदुओं के मत विषयक बातें लिखी है इस से विदित होता है कि राजा जी का मत बौद्ध जैनी ही है। इसीलिये अपने मत की प्रशंसा वैदिकमत की निन्दा मनमानी की है। यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जानें नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामी जी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे है इन को अच्छा कब लग सकता है इसी लिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजा जी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है। इतिहा० पृष्ठ १५। पं० १। (हिन्दुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजाजी का है कि आर्यों को हिन्दु और पारस देश से आये हैं। पहिली बात तो इन की निर्मूल है क्योंकि वेदों से ले के महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों का हिन्दू नहीं लिखा कौन जाने राजाजी के पुरुखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन का परम्परा से स्वदेश पारस का संस्कार अब तक चला आया हो क्या यह बात असम्भव है कि

इस आर्य्यावर्त्त ही से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई मद्री पाण्डुराजा से विवाही थी उसी समय वा आगे पीछे वहा से यहा और यहां से वहां आ जा रहने का सम्भव होसकता है और क्या जो पारस देश से आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ? । इतिहा० पृ० १५ प० ५ (असुर को अहुर) नोट । प० १३ । यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुर लिया है और उसे सूरज का नाम माना है । असुरः प्राणदाता । असुरः सर्वेषां प्राणदः । असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव, देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य ! है (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहैं परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजा जी ने लिखी है सब निर्मूल है क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं हैं किंतु ऐसा पाठ ऋग्वेद भर में कहीं नहीं है । क्या आश्चर्य है कि ईरानवाले जिद्ध से देव को राक्षस कहते हों । इतिहा० पृ १५ । पं०७ । (हिंदू अपने तईं दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहने के निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त्त कहलाया पारस देश वाले भी आर्य्य थे वरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरानवाले तो अब तक ईरानी, पारस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए । कैसा झूंठ लिखा है कि अपने जुदा रहने के लिये आर्य्य पुकारते थे । जो ऋग्वेद की कथा भी राजा जी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः) (उत शूद्रे उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है (आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते है इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो ईरान से आर्य्य हो जाता है तो (आरा) और (अरि) आदि शब्दों से आर्य्य सिद्ध करने में किसी को राजा जी न अटका सकेंगे । ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूठी खुशामद किया ही करते है । इतिहा० १५ पं० २८ (ईरान की पुरानी पारसी भाषा में एक प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढे विना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राजाजी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुणों से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उस से और इस देशवालों से क्या सम्बन्ध हो सकता है जिन ने दृष्टान्त संस्कृत पुरानी पारसी के उदाहरण दिये है ये सब संस्कृत से पुरानी पारसी बनी है यह ठीक

है क्योंकि पारस देश का नाम निशान भी न था तब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी महाभारतयुद्ध में आया ही था इस लिये राजा जी का ऐसा अनुभव केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नही। इतिहास पृष्ठ १६। पं० २। से (ये आर्य्य उस समय सूर्य्य के उपासक थे वेद में सूर्य्य की बड़ी महिमा गायी है हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री इसी सूर्य्य की वन्दना है विष्णु इसी सूर्य्य का नाम है) राजा जी का स्वभाव सब से विलक्षण है ! कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे है परन्तु उपासना में सूर्य्य शब्द से जिस को गायत्री मन्त्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १। (आकाश को इन्द्र ठहराया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजा जी ने अपनी कल्पना से समझा होगा। इतिहा० पृष्ठ १८। प० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़ और बकरी इत्यादि का बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे। नोट—ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग विरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खम्भे से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोस्त सींक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खा गये) हाय ! ऐसे अनर्थ लेख से वेद और आर्य्यों की निन्दा कर राजा जी ने सन्तुष्टि क्यों की क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा, राजा जी ने वाममार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिस से वेदों की निन्दा हांसी हो लिखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १९। पं० १२। (वर्ण भेद शुरू में दो ही रहा होगा अर्थात् गोरा और काला वर्ण का अर्थ रङ्ग है) वाह क्या चतुराई की लटाझालिक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रङ्ग नहीं होता और (वर्णो वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषन्न पश्यति) हां यह हो तो हो कि विना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थ सिद्ध क्यों कर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से ले के अङ्गरेज के पैर पकरने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्य्यन्त राजा जी ऐसी चाल चलन से चले है कि जिस से इस पर्य्या देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादिशास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इङ्गित से प्रशंसा और अङ्गरेजों की प्रशंसा में जानो सभ भाटों के प्रपितामह

ही बन रहे हैं । क्या ही शोक की बात है कि इतिहासतिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में कितने बड़ी वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजा जी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैने अल्पसामर्थ्य से (स्थालीपुलाकन्याय) के समान थोड़ासा नमूना राजा जी का दिखलाया है । इतने ही से सब बुद्धिमान् राजा जी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे । जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामी जी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्वशक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को मानें और झूठ को छोड़ दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी की व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति । हां इतना कहता हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कह और लिख सकता है मेरी धार्मिक विद्वानों से प्रार्थना है कि जो कुछ मुझ से अन्यथा लेख हुआ हो तो क्षमा करें और अपनी प्रशंसनीय विद्यायुक्त प्रज्ञा से उस को शुद्ध कर लेवें इस पर सत्य २ परामर्श का प्रकाश कर आर्य्यों को सुभूषित करें ॥

ऋषिकालाङ्क भूवर्षे तपस्यस्याऽसिते दले ।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमच्छेत्तुमकार्य्यलम् ॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतोऽनुभ्रमोच्छेदनोग्रन्थः पूर्णः ॥

ओ३म् ॥

शुभअवसर !

केवल छः मास के लिये ।

सस्ता ! सस्ता !! बहुत ही सस्ता !!!

ऋग्वेद भाष्य और यजुर्वेद भाष्य

:-o-:

सम्पूर्ण ।

(ऋग्वेद भाष्य)

महर्षि श्री १०८ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी कृत ऋग्वेद भाष्य जो प्रारम्भ में ६०|||-)|| में और ता० २४ अप्रेल ०७ तक ३६) में बेचा जाता था उसी भाष्य के सर्व साधारण में वेदों का प्रचार बढ़ाने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा ने ता० २५ अप्रेल ०७ से केवल २०) मात्र कर दिये तिस पर भी २०) सैकड़ा कमीशन काट कर केवल १६) में **बेचा जावेगा** ।

नोट—ऋग्वेद का भाष्य सातवें मण्डल के पांचवें अष्टक के पांचवें अध्याय से तीसरे वर्ग के दूसरे मंत्र तक महर्षि श्री १०८ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने किया था इसलिये यहां तक तो भाष्य सहित छपा है इस के आगे का भाग २९० पृष्ठों में मूलमन्त्र छाप के पुस्तक पूर्ण की गई है सो आगे का मूल मंत्र भाग केवल १) में मिलेगा अंत के मूल मंत्र भाग सहित ऋग्वेदभाष्य की सम्पूर्ण पुस्तक के ८८४६ पृष्ठ हैं जिन के २१) मात्र है जो कमीशन काट कर १६|||-) में बेचा जावेगा ।

(यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण)

महर्षि श्री १०८ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी कृत यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण जो प्रारंभ में ३९) में और ता० २४ अप्रेल ०७ तक १६) में बेचा जाता था उसी भाष्य के सर्व्व साधारण के लाभार्थ श्रीमती परोपकारिणी सभा ने ता० २५ अप्रेल ०७ से केवल १०) कर दिये जो कमीशन काटकर केवल ८) में **बेचा जावेगा** ।

निम्नलिखित पते से बाहर मंगवानेवाले ग्राहकों को डाकमहसूलादि का खर्चा उपरोक्त दोनों भाष्यों के मूल्य से पृथक् देना पड़ेगा ।

मैनेजर—वैदिक पुस्तकालय अजमेर.

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर.

❀ वैदिक पुस्तकालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र ❀

बड़ा सूचीपत्र मंगवा के कमीशन आदि के नियम देखलें, जो मुफ्त मिलता है।

	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य सम्पूर्ण		२१)
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण		१०)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
बिना जिल्द की	१।)	=)
ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका		
केवल संस्कृत	।।।)	=)॥
,, जिल्द की	१।।।)	=)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
विवाह पद्धति	।)	)॥
वेदान्तिध्वान्तिनिवारण अंग्रेजी	-)	)॥
वेदान्तिध्वान्तिनिवारण हिन्दी	)।।।	)॥
मेलाचांदापुर (हिन्दी)	-)	)॥
मेलाचांदापुर (उर्दू)	-)	)॥
वर्णोच्चारणशिक्षा	)।।।	)॥
सन्धिविषय	।-)	)॥
नामिक	।)	)॥
कारकीय	≡)	)॥
सामासिक	।)	)॥
स्त्रैणताद्धित	।।=)	-)
अव्ययार्थ	-)॥	)॥
सौवर	-)॥	)॥
आख्यातिक	१।)	=)
पारिभाषिक	≡)	)॥
धातुपाठ	।)	)॥
गणपाठ	≡)	)॥
उणादिकोष	।।)	-)
निघण्टु	।)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	≡)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	)॥
सत्यार्थप्रकाश (हिन्दी) सादी	१।।)	।)॥
,, ,, (हिन्दी) बढ़िया	१।।।)	।-)
सत्यार्थप्रकाश (बंगला)	१)	।)
" " सजिल्द	१-)	।)॥
सत्यार्थप्रकाश (गुजराती)	१)	।)

	मू०	डा
छान्दोग्योपनिषद्भाष्य	३)	।≡
दशोपनिषद् मूल (गुटका)	।।=)	-)
शतपथ ब्राह्मण सम्पूर्ण	४)	।)।
व्यवहारभानु	=)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)।।।	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)।।।	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	।)	)॥
,, ,, (मरहठी)	-)	)॥
,, ,, (अंग्रेजी)	)।।।	)॥
गोकरुणानिधि	-)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
संस्कृत आर्य्यभाषासहित	-)॥	)
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश अंग्रेजी	)।	)॥
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	-)॥	)॥
शास्त्रार्थकाशी	)।।।	)॥
आर्य्याभिविनय (गुटका)	≡)	)।
,, जिल्द की	।-)	-)
,, मोटे अक्षरों में	।=)	=)
,, ,, रंगीनमोटेकागजपर	।।)	=)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	-)॥	)॥
,, जिल्द की	≡)॥	-)
,, बढ़िया	=)	-)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
संस्कारविधि	।।)	-)॥
,, बढ़िया	।।=)	=)
यजुर्वेद भाषाभाष्य	२)	।≡)
शतपथपहिलाकाण्ड	।)	-)
निरुक्त	।।=)	-)॥
स्वीकारपत्र	)।	)॥
आर्य्यसमाज के नियम हिन्दी	=)सैकड़ा	
" " " " रंगबिरंग स्याही तथा सुनहरी अक्षर	२)	,,
,, ,, अंग्रेजी सफ़ेद कागज़	।)	,,

॥ ओ३म् खम्ब्रह्म ॥

काशीशास्त्रार्थः

अर्थात्

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

और

काशी के स्वामी विशुद्धानन्दजी बालशास्त्री

आदि परिडतों के बीच दुर्गाकुराड

के

समीप आनन्दबाग़

में हुआ था.

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

मे छपकर प्रकाशित हुआ.

दयानन्दाब्द २९.

आठवीं वार
२००० प्रति.

संवत् १९६९ वि०

मूल्य)॥।
डाकव्यय)॥

भूमिका ॥

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ मि० कार्त्तिक सुदि १२ मंगलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वती" जी का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं, इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्तिपूजनादिखण्डनविषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था उन को वेद प्रमाण से मण्डन उचित था सो कुछ भी न कर सके क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है ऐसे हुए पश्चात् भी जिस २ ग्रन्थान्तर में से जो २ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषण वाची है इस में स्वामीजी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था इस में बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके। सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है ? ।

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामीजी ने उस को विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशीनिवासी पण्डितों से कुछ भी न बन पड़ा एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशिराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशिराज आदि चुप होके बैठे रहें ? और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें क्या स्वामीजी का पांच मिनिट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी। और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उन को रोकने वाला न हुआ ? और क्या एक दम उठ के चुप हो के बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ? यह तो हुआ सो हुआ परन्तु

एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभाके व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उन की बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उन के कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी वार काशीजी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो इस पर भी कुछ नहीं करते यह भी कितने निश्चय करने की बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सम्मुख हो के अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ? इस से यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है वही ठीक है और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिस में सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे सत्य ठहरती है । उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था उस पर स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो २ स्वामीजी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिये कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं । और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है वहां २ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामीजी का मत नहीं, स्वामीजी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं और मंत्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतः प्रमाण हैं ॥

प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय ।

ओ३म्

अथ काशी-शास्त्रार्थः ॥

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति-वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपतवैष्णवादिसंप्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्त्येवं हरद्वारमारभ्य गंगातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन्सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीपः आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्तिपूजनादिविधानं न लब्धम् । प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, ततः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति । पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे सवत्सरे १९२६ मगलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः । तदा दयानन्दस्वामिना महाराज प्रत्युक्तम् । वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा, तदा महाराजेनोक्तम् वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?, तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्-पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवत्यस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि, तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो

दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तं युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति । तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोस्तीति । तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्त्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम् ? नास्तिचेद्वद नास्तीति । तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत्तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योस्ति तस्मात्स एवादौ कर्त्तव्यः कुतो वेदोक्तकर्मैवमुख्यमस्त्यतः । मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति । तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति ? स्वामिनोक्तम्—यद्वैकिंचन्मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया इति सामवेदे * । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्चनानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति । तदा स्वामिनोक्तमस्य प्रकरणान्तरस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति । पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदैव त्वं यदि जानासीति । तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनमभविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम् । कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कण्ठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरे चेति । तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति, तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति । स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यस्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—चोदनालक्षणोर्थो धर्म इति जैमिनिसूत्रमि-

---

* इदं पंडितानामेव मतमंगीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

ति * । तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत् । तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् । तदा स्वामिनोक्तमस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमेकमेव लक्षणं धर्मस्येति । तदा स्वामिनोक्तम्-किं-चनदिति ? तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम् तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्-धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ? तदा स्वामिनोक्तम्—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणमिति मनुस्मृतेः श्लोकोस्ति † तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति । तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् । त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति ? तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तं तदा बहुभिर्युगपत्पृष्टं प्रतिमा शब्दो वेदे नास्ति किमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति । तदा तैरुक्तं क्वास्तीति ? तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति, तदा तैरुक्तं किं च तद्वचनमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कंपन्ते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्यादीनि । तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे + वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति प्रतिमा शब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति ॥

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मंत्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति । तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमंत्रा लिखिता एतेषां मध्यात्

* इदन्तु सूत्रमस्ति नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिस्सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानिस्तस्य कुतो न पराजय इति बोध्यम् ।

† अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम् ।

+ अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम् ।

प्रतिमंत्रेण त्रिंत्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततोऽव्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मंत्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव। तद्यथा—"स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति" प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम्। ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति। तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाःशान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोपशान्तिर्भवतीति, तदा स्वामिनोक्तमिदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोस्तीति?, तदा बालशास्त्रिणोक्तमिन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति। तदा स्वामिनोक्तमिन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवन्ति न तु दर्शयितॄणि परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोस्तीति? तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्। तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तमन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति। तदा स्वामिनोक्तम्भवता तत्प्रकरणं दृष्ट किं? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मंत्रस्यार्थं वदेति तदा शिवसहायेन मौनं कृतम्। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति? तदा स्वामिनोक्तं वेदा ईश्वराज्जाता इति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाता किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति? तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति? तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमीश्वरस्त्वेक एव परंतु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति? तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्य भावो वेति? तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः सम्बन्धश्चेति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं मनो ब्रह्मेत्युपासीत। आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति। तदा स्वामिनो-

क्तम् यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु * दृश्यते तथा पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति । तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं चेति । मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ? तदा स्वामिनोक्तं वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति । तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ? तदा स्वामिनोक्तं पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति । ततो माधवाचार्य्येणोक्तं पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति । तदा स्वामिनोक्तं पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति कुतः पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति । तदाविशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् "एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोकाव्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीत्यत्रबृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ? तदा स्वामिनोक्त"—अस्त्येव प्रामाण्यमिति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति । तदा स्वामिनोक्तं सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति, तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य द्वे पत्रे † निस्सारिते अत्र पुराण शब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति । तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति, तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" तदा स्वामिनोक्तं—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति ।

---

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

† इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ? तदा स्वामिनोक्तं—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति । तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति । अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो नेति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति व्याकरणेपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासस्यात्रपुराणशब्दोविशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ? तदा स्वामिनोक्तमन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणन्तद्यथा—इतिहासः पुराणः पंचमो वेदानां वेद इत्युक्तम् । तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदेनास्तीत्युक्तम्, तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् * यदि वेदेष्वयम्पाठो न भवेचेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति । तदा स्वामिनोक्तम्—इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता नवेति ? । तदा बालशास्त्रिणोक्तमेकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति । तदा स्वामिनोक्तम्—कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरण प्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ? बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति । तदामाधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य † निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तं तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् तत्रेदं वचनं वर्त्तते। दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः । इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्यादिति । अस्यायमर्थः पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्येव वेदः

* इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्त नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति च ।
† इदमपि तन्मतमेव नैव स्वामिन इति ।

पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव आख्या कुत एतदन्यत्रऋग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं नचोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति यदिह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति क्वाप्येवं वेदेषु * पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता। तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानींगच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोभूत्। ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः। एवं च तेषाम् कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति। अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति। दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ता पूर्वपक्षास्सन्ति तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निस्सृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तं येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तत्थ्यमेवेति ॥

---

* इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति।

स्वामीजी ने कहा कि यह सूत्र है यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा तब स्वामीजी ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वह कैसा है तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा। तब स्वामीजी ने कहा कि धर्म्म के तो दश लक्षण हैं आप एक ही क्यों कहते हैं तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन लक्षण हैं।

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि:—धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं। तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है इस पर स्वामीजी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये तब बालशास्त्रीजी ने कुछ भी उत्तर न दिया। फिर बहुतसे पण्डितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है देवता के स्थान कंपायमान और प्रतिमा हँसती है इत्यादि * फिर उन लोगों ने कहा प्रतिमा शब्द तो वेदों मे भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इस का क्या अर्थ है।

तब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुतशान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये इन्द्र इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं इनमें से प्रतिमन्त्र करके तीन हजार आहुति करनी चाहिये इस

* यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है।

के अनन्तर व्याहृति करके पांच २ आहुति करनी चाहियें ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है इस क्रम करके अद्भुतशान्ति का विधान किया है जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोकविषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है सो ऐसा है कि जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिणदिशा पश्चिमदिशा और उत्तरदिशा इस के अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके इस के अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है इस पर सब चुप रहे, फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस २ दिशा में जो २ देवता है उस २ की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है, इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है ? तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखनेवाली हैं दिखानेवाली नहीं परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र" इत्यादि मन्त्रों में से शब्द-का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्रीजी ने कुछ न कहा फिर पण्डित शिवसहायजी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमनशान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ कहिये तब शिवसहायजी चुप हो रहे फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ? इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से इत्यादि ? इस पर स्वामी-जी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुतसे हैं । तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षणवाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं इस पर स्वामी-जी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षणवाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं । फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि इस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है । फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य मे ब्रह्मबुद्धि करके प्रत्येक उपा-सना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिये ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत"

इत्यादि वचन वेदों ※ में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि मूर्त्तीरुपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं दख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ? ।

तब माधवाऽऽचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयञ्चेति" इस मन्त्र मे पूर्त्त शब्द से किस का ग्रहण है ? ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वापी, कूप, तडाग और आराम का ग्रहण है ।

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता, यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये ।

तब माधवाऽऽचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत से जगह वेदो में है परन्तु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं होसकता क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है ।

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि (एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति) यह सब जो पठित है इस का प्रमाण है वा नहीं ? ।

इस पर स्वामीजी ने कहा— हां प्रमाण है ।

फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि यदि श्लोकका भी प्रमाण है तो सबका प्रमाण आया ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इसका विचार हो ।

माधवाचार्य ने वदों के दो पत्र † निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है ? ।

स्वामीजी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये ।

तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा । ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

※ यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।

† यह भी उन्हीं का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि यह गृह्यसूत्र का पाठ है ।

तब बालशास्त्रीजी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ? ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं है परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ? ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होना है क्योंकि "अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है । सुनिये—"इतिहासः पुराणं पंचमो वेदाना वेदः" इत्यादि में कहा है ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है । इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वेद * में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो तब सब चुप हो रहे ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्पसंज्ञा करी है वा नहीं ? ।

तब बालशास्त्रीजी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है यदि जानते हो तो इस के उदाहरणपूर्वक समाधान कहो ॥

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा, माधवाचार्य ने दो पत्र वेदों † के निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है?

स्वामीजी ने कहा कि पढ़ो इस में किस प्रकार का पाठ है जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामीजी के ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ॥

* यह उन्हीं पण्डितों के मतमतानुसार कहा है किन्तु स्वामीजी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ॥

† ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ॥

स्वामीजी ने कहा कि आप ही इस का पाठ कीजिये तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता ऐसा कह के वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने दयानन्द स्वामीजी के हाथ में दिये ॥

इस पर स्वामीजी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे इस में अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही स्वामीजी यह उत्तर कहा चाहते थे कि "पुरानी जो विद्य है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहात है" इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारे वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा इसलिये यहां उपनिषदे का ही ग्रहण है औरों का नहीं पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है इस से ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता वि "ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में * कहीं ऐसा पाठ नहीं है इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं तब सब के सब उठ खडे हुए और कोलाहल करते हुए चले गये, इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय † हुआ परन्तु जो दयानन्द स्वामीजी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उन का वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उन का पराजय हुआ ॥

इति ॥

---

* यह पंडितों के मतानुसार से कहा है यह स्वामीजी का मत नहीं है ॥

† क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामीजीका पराजय और काशीस्थ पंडितों का विजय हुआ। किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं क्योंकि स्वामीजी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे, काशीस्थ पंडितों का पुराण और तंत्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि है उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चित है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥

ओ३म् ॥

सस्ता ! सस्ता !! बहुत ही सस्ता !!!

ऋग्वेदभाष्य और यजुर्वेदभाष्य

(ऋग्वेदभाष्य सम्पूर्ण)

महर्षि श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी कृत ऋग्वेदभाष्य जो प्रारम्भ में ९०॥।=)॥ में और ता० २४ अप्रेल ०७ तक ३६) में बेचा जाता था उसी भाष्य के सर्वसाधारण में वेदों का प्रचार बढ़ाने के लिये श्रीमती परोपकारिणीसभा ने ता० २५ अप्रेल ०७ से केवल २०) मात्र कर दिये तिस पर भी २०) सैकड़ा कमीशन काटकर केवल १६) **में बिक रहा है।**

नोट—ऋग्वेद का भाष्य सातवें मण्डल के पांचवें अष्टक के पांचवें अध्याय से तीसरे वर्ग के दूसरे मंत्र तक महर्षि श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने किया था इसलिये यहांतक तो भाष्यसहित छपा है इसके आगे का भाग २६० पृष्ठों में मूलमन्त्र छाप के पुस्तक पूर्ण करदी गई है सो आगे का मूलमन्त्र भाग केवल १) में मिलेगा अंत के मूलमन्त्र भागसहित ऋग्वेदभाष्य की सम्पूर्ण पुस्तक के ८८४६ पृष्ठ हैं जिन के २१) मात्र हैं जो कमीशन काटकर १६॥।=) **में बिक रहा है।**

(यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण)

महर्षि श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी कृत यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण जो प्रारम्भ में ३६) में और ता० २४ अप्रेल ०७ तक १६) में बेचा जाता था उसी भाष्य के सर्वसाधारण के लाभार्थ श्रीमती परोपकारिणीसभा ने ता० २५ अप्रेल ०७ से केवल १०) कर दिये जो कमीशन काटकर केवल ८) **में बिक रहा है।**

निम्नलिखित पते से बाहर मँगानेवाले ग्राहकों को डाकमहसूलादि का खर्चा उपरोक्त दोनों भाष्यों के मूल्य से पृथक् देना पड़ेगा। उपरोक्त भाष्यों के मंगानेवाले ग्राहकों को आर्डर भेजने के साथ ही निकट के रेलवे स्टेशन का नाम भी लिखदेना चाहिये कि जिससे भेजने में विलम्ब न हो अब बहुत ही थोड़ी प्रतियें शेष रही हैं इसलिये आर्डर भेजने में विलम्ब न करना चाहिये।

मैनेजर,

वैदिक-पुस्तकालय, अजमेर.

विज्ञापन ॥

पहिले कमीशन में पुस्तकें मिलती थीं अब नक़द रुपया मिलेगा ।

डाकमहसूल सबका मूल्य से अलग देना होगा ॥

विक्रयार्थ पुस्तकें	मूल्य	विक्रयार्थ पुस्तकें	मूल्य
ऋग्वेदभाष्य (९ भाग)	२०)	सत्यार्थप्रकाश (बंगला)	१)
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	१०)	संस्कारविधि	।।)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	१)	,, बढ़िया	।।=)
वेदाङ्गप्रकाश १४ भाग	४।≡)।।।	विवाहपद्धति	।)
अष्टाध्यायी मूल	≡)।।	आर्याभिविनय गुटका	≠)
पंचमहायज्ञविधि	‑)।।	शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद	‑)।।।
,, बढ़िया	=)	आ० स० के नियमोपनियम	)।
निरुक्त	।।=)	वेदविरुद्धमतखण्डन	≈)
शतपथ (१ काण्ड)	।)	वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी	)।।।
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≈)	,, अंग्रेज़ी	‑)
व्यवहारभानु	≈)	भ्रान्तिनिवारण	‑)
भ्रमोच्छेदन	)।।।	शास्त्रार्थकाशी	)।।।
अनुभ्रमोच्छेदन	)।।।	स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश नागरी	)।।
सत्यधर्मविचार (मेलाचांदापुर)नागरी	‑)	तथा अंग्रेज़ी	)।
,, ,, उर्दू	‑)	मूलवेद साधारण	५)
आर्योद्देश्यरत्नमाला (नागरी)	)।	तथा बढ़िया	५।।)
,, मरहठी)	‑)	अनुक्रमणिका	१।।)
,, (अंग्रेज़ी)	)।।।	शतपथब्राह्मण पूरा	४)
गोकरुणानिधि	‑)	ईशादिदशोपनिषद् मूल	।।≈)
स्वामीनारायणमतखण्डन	‑)।।	छान्दोग्योपनिषद् संस्कृत तथा हिन्दी भाष्य	३)
हवनमंत्र	)।	यजुर्वेदभाषाभाष्य	२)
आर्याभिविनय बड़े अक्षरों का	।=)		
सत्यार्थप्रकाश नागरी	१)	बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य	३)

पुस्तक मिलने का पता—

प्रबन्धकर्त्ता,

वैदिक-पुस्तकालय,

अजमेर.

ओ३म्

स्वीकारपत्र ॥

श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८

श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती

कृत

श्रीमतीपरोपकारिणीसभा सम्बन्धी

अजमेर

वैदिकयन्त्रालय

में

मुद्रित हुआ

संवत् १९६० विक्रमीय

चतुर्थवार २०००

मूल्य)।

श्रीराम जी

परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामि-
कृत स्वीकारपत्र की प्रति ॥

आज्ञा (राज्ये श्रीमहद्राजसभा) संख्या २६०

आज यह स्वीकारपत्र श्रीमान् श्री १०८ श्रीजी धीरवीर चिरप्रतापी विराजमानराज्ये श्रीमहद्राजसभा के सन्मुख स्वामीजी श्री दयानन्दसरस्वती जी ने सर्वरीत्या अङ्गीकार किया अत एवः—

आज्ञा हुई—

कि प्रथम प्रति तो इस स्वीकारपत्र की स्वामीजी श्री दयानन्दसरस्वती जी को राज्ये श्री महद्राजसभा के हस्ताक्षरी और मुद्राङ्कित दी जावे और दूसरी प्रति उक्तसभा के पत्रालय में रहे और एक एक प्रति इस की राज यन्त्रालय में मुद्रित होकर इस स्वीकारपत्र में लिखे सब सभासदों के पास उन के ज्ञातार्थ और इस के नियमानुसार वर्तने के लिये भेजी जावे संवत् १९३९ फाल्गुन शुक्ला ५ मङ्गलवार तदनुसार ता० २७ फेब्रुअरी सन् १८८३ ई० ।

हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य
(श्रीमेदपाटेश्वर और राज्ये श्रीमहद्राजसभापति)

—:-०-:—

राज्ये श्रीमहद्राजसभा के सभासदों के हस्ताक्षर—

१ राव तख्तसिंह बेदले
२ राव रत्नसिंह पारसोली
३ द० महाराज गजसिंह का
४ द० महाराज रायसिंह का
५ हस्ताक्षर मामा बख्तावरसिंहस्य
६ द० राणावत उदयसिंह
७ हस्ताक्षर ठाकुर मनोहरसिंह
८ हस्ताक्षर कविराज श्यामलदासस्य

९ हस्ताक्षर सहीवाला अर्जुनसिंह का
१० द० रा० पन्नालाल
११ ह० पुरोहितपद्मनाथस्य
१२ जा० मुकुन्दलाल
१३ ह० मोहनलाल पण्ड्या

स्वीकारपत्र ॥

मैं स्वामी दयानन्दसरस्वती निम्नलिखित नियमानुसार त्रयोविंशति सज्जन आर्य्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूं और उस को परोपकार सुकार्य में लगाने के लिये अधिष्ठाता करके यह पत्र लिखे देता हू कि समयपर कार्यकारी हो। जो यह एक सभा कि जिसका नाम परोपकारिणीसभा है उस के निम्नलिखित त्रयोविंशति सज्जन पुरुष सभासद् हैं उन में से इस सभा के सभापतिः—

१ श्री मन्महाराजाधिराज महीमहेन्द्र यावदार्य्यकुलदिवाकर महाराणा जी श्री १०८ श्रीसज्जनसिंहजी वर्म्मा धीरवीर जी० सी० एस० आई० उदयपुराधीश हैं, उदयपुर राजमेवाड़।

२ उपसभापति लाला मूलराज एम० ए० एक्स्ट्राएसिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहौर जन्मस्थान लुधियाना ॥

३ मन्त्री श्रीयुत कविराज श्यामलदास जी उदयपुर राजमेवाड़।

४ मन्त्री लाला रामशरणदास रईस उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ।

५ उपमन्त्री पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी निवास उदयपुर जन्मभूमि मथुरा ॥

सभासद्

	नाम	स्थान
१	श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा	शाहपुरा राज मेवाड़
२	श्रीमत् राव तख्तसिंहजी वर्म्मा	बेदला राज मेवाड़
३	श्रीमत् राज्य राणा श्रीफतहसिंहजी वर्म्मा	देलवाड़ा राज मेवाड़
४	श्रीमत् रावत अर्जुनसिंह जी वर्मा	आसींद राज मेवाड़
५	श्रीमत् महाराज श्रीगजसिंह जी वर्म्मा	उदयपुर मेवाड़
६	श्रीमत् राव श्री बहादुरसिंह जी वर्म्मा	मसूदा ज़िले अजमेर
७	राय बहादुर पं० सुन्दरलाल सुपेरेंटेंडेंट वर्कशोप और प्रेस अलीगढ	आगरा
८	राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई. डिपुटी कलक्टर बिजनौर	मुरादाबाद
९	बाबू दुर्गाप्रसाद कोशाध्यक्ष आर्य्यसमाज व रईस	फर्रुखाबाद

१० लाला जगन्नाथ प्रसाद रईस फर्रुखाबाद
११ सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद विसाऊ राजपूताना
१२ लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य्यसमाज फर्रुखाबाद
१३ बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसर्यट छावनी मुरार कानपुर
१४ लाला साईंदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर
१५ बाबू माधवदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर
१६ राव बहादुर रा० रा० पंडित गोपालराव हरि देशमुख मेम्बर कौंसिल गवर्नर बम्बई और प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई पूना
१७ राव बहादुर रा० रा० महादेव गोविन्द रान्डे जज्ज तथा
१८ पं० श्यामजीकृष्णवर्म्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनीवर्स्टी आक्सफोर्डलंडन बम्बई

नियम

१ उक्त सभा जैसे कि वर्त्तमानकाल वा आपत्काल में नियमानुसार मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके सर्वहितकारी कार्य में लगाती है वैसे मेरे पश्चात् अर्थात् मेरे मृत्यु के पीछे भी लगाया करेः—

प्रथम–वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने सुनने सुनाने छापने छपवाने आदि में ।

द्वितीय–वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशकमंडली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में ॥

तृतीय–आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के संरक्षण पोषण और सुशिक्षा में व्यय करे और करावे ॥

२ जैसे मेरी विद्यमानता में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे मेरे पश्चात् भी तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब किताब समझने और पड़ताल्ने के लिये भेजा करे और वह सभासद् जाकर समस्त आय व्यय और संचय आदि की जांच पडताल करे और उनके तले अपने हस्ताक्षर लिखदे और उस विषय का एक २ पत्र प्रति सभासद् के पास भेजे और उसके प्रबन्ध में कुछ हानि लाभ देखे उसकी सूचना अपने भी परामर्श सहित प्रत्येक सभासद् के पास लिख भेजे पश्चात् प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी २ सम्मति सभापति के पास लिख कर भेजदे और सभापति सब

की सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करे और कोई सभासद् इस विषय में आलस्य अथवा अन्यथा व्यवहार न करे ॥

३ इस सभा को उचित है किन्तु अत्यावश्यक है कि जैसा यह परमधर्म और परमार्थ का कार्य है उसको वैसा ही उत्साह पुरुषार्थ गम्भीरता और उदारता से करे ॥

४ मेरे पीछे उक्त त्रयोविंशति आर्यजनों की सभा सर्वथा मेरे स्थानापन्न समझी जाय अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और रहे यदि उक्त सभासदों में से कोई इन नियमों से विरुद्ध स्वार्थ के वश होकर वा कोई अन्य जन अपना अधिकार जतावे तो वह सर्वथा मिथ्या समझा जाय ॥

५ जैसे इस सभा को अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा और उन्नति करने का अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार करने कराने का भी अधिकार है अर्थात् जब मेरा देह छूटे तो न उसको गाड़ने न जल में वहाने न जङ्गल में फेंकने दे केवल चन्दन की चिता वनावे और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन चार मन घी पांच सेर कपूर ढाई सेर अगर तगर और दश मन काष्ठ लेकर वेदानुकूल जैसे कि संस्कार विधि में लिखा है वेदी वनाकर तदुक्त वेद मन्त्रों से होम करके भस्म करे इससे भिन्न कुछ भी वेद विरुद्ध क्रिया न करे और जो सभाजन उपस्थित न हों तो जो कोई समय पर उपस्थित हो वही पूर्वोक्त क्रिया कर दे और जितना धन उसमें लगे उतना सभा से ले ले और सभा उसको दे दे ॥

६ अपनी विद्यमानता में और मेरे पश्चात् यह सभा चाहे जिस सभासद् को पृथक् कर के उसका प्रतिनिधि किसी अन्य योग्य सामाजिक आर्यपुरुष को नियत कर सकती है परन्तु कोई सभासद् सभा से तब तक पृथक् न किया जाय जब तक उसके कार्य में अन्यथा व्यवहार न पाया जाय ॥

७ मेरे सदृश यह सभा सदैव स्वीकारपत्र की व्याख्या वा उस के नियम और प्रतिज्ञाओं के पालन वा किसी सभासद् के पृथक् और उसके स्थान में अन्य सभासद् के नियत करने वा मेरे विपत् और आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो समस्त सभासदों की सम्मति से नि-

श्चय और निर्णय पाया वा पावे और जो सम्मति में परस्पर विरोध हो तो बहुपक्षानुसार प्रबन्ध करै और सभापति की सम्मति को सदैव द्विगुण जाने ॥

८ किसी समय भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को अपराध की परीक्षा कर पृथक् न करसके जब तक पहले तीन के प्रतिनिधि नियत न करले ॥

९ यदि सभा में से कोई पुरुष मरजाय वा पूर्वोक्त नियमों और वेदोक्त धर्मों को त्याग कर विरुद्ध चलने लगे तो इस सभा के सभापति को उचित है कि सब सभासदों की संमति से पृथक् करके उस के स्थान में किसी अन्य योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्य पुरुष को नियत करदे परन्तु जब तक नित्यकार्य के अनन्तर नवीनकार्य का आरम्भ न हो ॥

१० इस सभा को सर्वथा प्रबन्ध करने और नवीनयुक्ति निकालने का अधिकार है परन्तु जो सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा २ निश्चय और विश्वास न हो पत्रद्वारा समय नियत करके संपूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति लेले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे ॥

११ प्रबन्ध न्यूनाधिक करना वा स्वीकार वा अस्वीकार करना वा किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना वा आय व्यय और संचय का जांच पड़ताल करना आदि लाभ हानि सब सभासदों को वार्षिक वा षाण्मासिक पत्रद्वारा सभापति छपवा कर विदित करै ॥

१२ इस स्वीकारपत्र संबन्धी कोई झगड़ा टंटा सामयिक राज्याधिकारियों की कचहरी में निवेदन न किया जाय। यह सभा अपने आप न्यायव्यवस्था कर ले परन्तु जो अपनी सामर्थ्य से बाहर हो तो राज्यगृह में निवेदन करके अपना कार्य सिद्ध करले ॥

१३ यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्य्यजन को पारितोषिक अर्थात् पेनशन देना चाहूं और उस की लिखत पढ़त कराके रजिस्टरी करादूं तो सभा को उचित है कि उस को माने और दे ॥

१४ किसी विशेष लाभ उन्नति परोपकार और सर्वहितकारी कार्य के वश मुझे और मेरे पीछे सभा को पूर्वोक्त नियमों के न्यूनाधिक करने का सर्वथा सदैव अधिकार है।

ह० दयानन्दसरस्वती

वैदिक यन्त्रालय अजमेर